राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता में वैदिक संस्कृति एवं अद्वैत वेदान्त दर्शन का योगदान।

कीर्तिका भट्टाचार्य

प्रस्तावना :

विश्व में भारत सबसे पुरानी सभ्यता का एक जाना माना देश है जहाँ वर्षो से कई प्रजातीय समूह एक साथ रहते है। भारत विविध सभ्यताओं का देश है। संस्कृति, परंपरा, धर्म और भाषा के अलग होने पर भी लोग यहाँ एक–दूसरे का सम्मान करते है साथ ही बंधुत्व व प्रेम की भावनाओं के साथ एक साथ रहते है। भारत एक ऐसा देश है जो "विविधता में एकता" की अवधारणा को उत्तम कोटी से प्रमाणित करता है। "विविधता में एकता" भारत की शक्ति और मनोबल है। राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता से तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्र में किसी भी प्रकार का भेद या अनेकत्व का अभाव है अपितु राष्ट्र में वर्तमान भेदों व अनेकताओं में एकत्व का भाव, अभेद दृष्टि, प्रत्येक के प्रति समान सम्मान रखना ही एकता है और इसी से अखण्डता आती है।

हमारा राष्ट्र एक सशक्त राष्ट्र है और यदि ये विकसित देशों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहा है तो इसके मूल मे इसकी एकता व अखण्डता ही है। यदि आप कहें कि किस एकता की बात हो रही है हमें तो सदैव भेद व विभाजक रेखऐं ही दिखती है तो मै कहूँगी कि अपनी दृष्टि पर से भौतिकवाद का जाल हटाइए और दृष्टि पर आध्यात्मिकता का रस डालिए और देखिए कि वे विभाजक रेखाएँ नही आपितु जोड़ने वाली मजबूत रस्सियाँ है जो इन भेदों को कभी अलग नही होने देंगी।

अपना देश भारत भौतिक दृष्टि से देखा जाए तो भेदों व अनेकताओं का संग्रहालय है। प्राचीन काल से ही भारत भूमी में विभिन्न संस्कृतियों व सम्प्रदायों का जन्म व विकास हुआ है। इतनी विभिन्नताओं के होने पर भी हमारा देश विश्व में अपनी एकता व अखण्डता के लिए अपनी अलग पहचान रखता है। पश्चिम के लोग इस तथ्य पर आश्चर्य करते है परन्तु हम भारतवासीयों क लिए यह कोई आश्चर्य की बात नही है क्योंकि यह हमारा स्वभाव है हमारी प्रवृत्ति है कि हम आध्यात्मिक दृष्टि रखते है अर्थात् भेद में अभेद दृष्टि रखते है और हमारी इस अभेद दृष्टि जिसे हम राष्ट्र की एकता या अखण्डता कह रहें है इसके मूल में हमारे वेद, धर्म व दर्शन ग्रन्थ है जो हमारे विचारों, भावों में उदात्तता लाते है। राष्ट्रिय एकता का अर्थ ही होता है, राष्ट्र के सब घटकों में भिन्न–भिन्न विचारों और विभिन्न आस्थाओं के होते हुए भी आपसी प्रेम और बंधुत्व बना रहे। और ये एकता भौतिक नही अपितु मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक है। एकता भूतरूप नही भावरूप है। इस एकता के पिता है प्रेम व माता है करूणा। ऐसे ही विश्व के सभी धर्मो का आधार भी प्रेम व करूणा ही है। हमारे धर्म ग्रन्थ तो अतिशय रूप से प्रेम व करूणा के भाव से अथवा वयं के भाव से ओत–प्रोत है। ऋग्वेद के चिंतन में ऐसा ही भाव दिखाई देता है – "एकम् सत् विप्राः बहुधा वदन्ति" अर्थात् सत्य एक ही है पर लोग भिन्न–भिन्न नाम से उसका वर्णन करते है। इसमे धर्मनिरपेक्षता व राष्ट्रियता प्रकट होती है। ऋग्वेद में एक सूक्ति है "एकैव मानुषी जाति" अर्थात् मानव की जाति एक है। यजुर्वेद में कहा गया है – "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।" अर्थात् हम सब एक दूसरे की ओर मित्र की दृष्टि से देखे, मित्र का भाव रखे। अथर्ववेद कहता है – सं वो मनांसि सं व्रता समाकूती न मामसि।

अभी ये विव्रता स्थान तान्वः सं नयमामसि।। 3/8/5

अर्थात् हे मनुष्यों ! "तुम अपने मन एक करो। तुम्हारे कर्म एकता के लिए हो, तुम्हारे संकल्प एक हो, जिससे तुम संघ शक्ति से युक्त हो जाओ। जो ये आपस में विरोध करने वाले हैं, उन सबको हम एक विचार से एकत्र हो झुका देते हैं। संघ शक्ति के प्रति समर्पण इस वेद मंत्र का प्रतिपाद्य विषय है। संघ शाक्ति में विश्वास रखने वाला व्यक्ति कभी राष्ट्रिय एकता और अखण्डता का

शत्रु नहीं हो सकता।

भारत में असमानताओं के होने पर भी अखण्डता का अस्तित्व है। इस भावना की पराकाष्ठता व परिनिष्ठता भारतीय दर्शनों में प्राप्त होती है। भारतीय दर्शनो की दृष्टि व्यापक व मनोवृत्ति उदार है। यहाँ मतभेद है परन्तु उपेक्षा नहीं। यहाँ विरोधी मत का अपमान नहीं किया जाता, उस मत को नष्ट करने का प्रयास नही किया जाता, वरन् युक्तिपूर्वक समीक्षा द्वारा एक दूसरे के विचारों को समझकर ही अपने मत को प्रतिष्ठित किया जाता है। इन्हीं भावों को देश के नागरिकों को समझना होगा, उन्हें समझना होगा कि राष्ट्र की एकता के अवरोधक तत्त्व धर्म, जाति या क्षेत्र नहीं अपितु एक धर्म, जाति या क्षेत्र का दूसरे के प्रति द्वेष, वैर व ईर्ष्या है।

यद्यपि भारतीय दर्शनों का उद्देश्य आध्यात्मिक ही नहीं व्यावहारिक व मनोवैज्ञानिक भी है परन्तु राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता में सबसे अधिक योगदान भारतीय दर्शनों की आध्यात्मिक मनोवृत्ति का ही है जो यह विश्वास दिलाता है कि जगत् में एक शाश्वत नैतिक व्यवस्था है, जिससे प्रचूर आशा मिलती है।

हम एकता और अखण्डता की बात कर रहे है तो यहाँ अद्वैत वेदान्त दर्शन का उल्लेख तो अनिवार्य ही हो जाता है क्योंकि यहाँ तो सारी व्याख्याएँ व सारी युक्तियाँ इस एकत्व की सिद्धि के लिए ही दी गयी है। श्रीमत्सदानन्द वेदान्तसार में कहते है – "विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्। तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।" अर्थात जीव और ब्रह्म की एकता जो शुद्ध चैतन्य रूप है तथा इस शास्त्र का प्रमेय है। जीव और ब्रह्म की इसी एकता में समस्त ग्रन्थों का तात्पर्य है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त का तो उद्देश्य ही एकता का प्रतिपादन है।

राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता का अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से चिन्तन करते हुए यह विचार मेरे मानसपटल पर उद्भूत होता है कि भारत रूप एक ईकाई की चेतना समष्टि रूप में वे सभी जीवात्माएँ है जिन्हें हम भारतीय कहते है और तब जीवात्मा का जीवात्मा से कही कोई भेद प्रत्यक्ष नही होता केवल एकत्व का भान रहता है। श्रीमत्सदानन्द वेदान्तसार में कहते है – "वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म। अज्ञानादिसकलजडसमूहोऽवस्तु। अर्थात ब्रह्म और जगत में सत्, चित्, आनन्द, अद्वितीय ब्रह्म ही वस्तु है। अज्ञान से उत्पन्न सम्पूर्ण जड़ पदार्थ का समूह अवस्तु है।

"अनयैवावरणशक्त्यावाच्छिन्नस्यात्मनः कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखमोहात्मकतुच्छसंसारभावनापि सम्भाव्यते, यथा स्वज्ञानेनावृतायां रज्ज्वां सर्पत्वसम्भावना।"

अर्थात् अविद्या की आवरण शक्ति से सम्पन्न हुआ आत्मा स्वयं को सांसारिक विषयों का कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी आदि समझता है। किन्तु यह सब रस्सी में सर्पभ्रम की तरह मिथ्या है। निष्कर्ष यही है कि जीव के जीवत्व का कारण अज्ञान है, स्वरूपतः तो जीव भी ब्रह्म ही है।

अब ये तो हुई दार्शनिक बातें परन्तु राष्ट्र की एकता व अखण्डता में इनकी व्यावहारिकता ये है कि जब प्रत्येक जीवात्मा का अस्तित्व "अहं ब्रह्मास्मि" मात्र है तो मनुष्य मनुष्य में भेद का तो कोई आधार ही नहीं रह जाता। जब मनुष्य में ही कोई भेद नहीं तो मनुष्य द्वारा बाँटे गये धर्म, जाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय तो बहुत ही गौण व छोटे लगने लगते है। और यदि आप कहें कि सामाजिक व्यवस्था के लिए तो ये भेद आवश्यक है तो अद्वैत वेदान्त कहता है कि भेदों की व्यावहारिक सत्ता है परन्तु पारमार्थिक सत्ता नहीं। और मै कहती हूँ कि यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तः करण में पारमार्थिक सत्ता का भान रखे तो भेद भी उसे अपने ही लगेंगे और मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनो से प्रेम रखता है। इस प्रकार राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत प्रोत रहेगा।

हमारे राष्ट्र को कुछ उपद्रवी बुद्धियाँ मेरा ईश्वर, तेरा ईश्वर, मेरा धर्म, तेरा धर्म कहकर बाँटने में सदैव प्रयासरत रहती है। मै कहती हूँ उन्हें अद्वैत वेदान्त पढ़ने को दे दो शायद कुछ सद्बुद्धि आ जाए।

"ईश्वर" इस प्रत्यय को लेकर जो दृष्टि अद्वैत वेदान्त की है उससे परिष्कृत दृष्टि तो कहीं हो ही नही सकती। ईश्वर के विषय में यहाँ के विचारो में उदात्तता है जो वह सगुण ब्रह्म एवं निर्गुण ब्रह्म जैसे परिष्कृत विचार को वेदों से निकालकर लाया है।

यहाँ अज्ञान ब्रह्म की उपाधि है। सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म जब ईश्वर रूप से प्रकट होता है तो 'अज्ञानसमष्टि' उपाधि है और जीव रूप से प्रकट होता है तो 'अज्ञान व्यष्टि' उपाधि है। अज्ञान समष्टि से उपहित ब्रह्म ही वेदान्त में सगुण ब्रह्म, ईश्वर, सर्वज्ञ,

सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान कहा गया है। यही ईश्वर जगत् का कर्ता, भर्ता व हर्ता है। परन्तु अज्ञान ज्ञान विरोधि है एवं ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर नष्ट हो जाता है। इस स्थिति में वेदान्तसार मे कहा गया है – "जलाशयजलतदगत्प्रतिबिम्बाकाशयोर्वाऽऽधारभूतानुपहिताकाशवदनयोरज्ञानतदुपहितचैतन्ययोराधारभूतं यदनुपहितं चैतन्यं तत्तुरीयमित्युच्यते।" अर्थात् जलाशय में पड़े हुए आकाशप्रतिबिम्ब तथा वापी, कुआँ, तड़ागादि में पड़े हुए आकाशप्रतिबिम्ब का आधारभूत अनुपहित आकाश अर्थात् महाकाश है, वैसे ही अज्ञानसमाष्टि से उपहित ईश्वर चैतन्य और अज्ञान व्यष्टि से उपहित प्राज्ञ चैतन्य का आधारभूत अनुपहित सर्वव्यापी विशुद्ध चैतन्य है, उसी को तुरीय (चतुर्थ) कहते है। यही अद्वैत वेदान्त का निर्गुण ब्रह्म है जो सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर में भी व्याप्त है।

अपने इस प्रत्यय से अद्वैत वेदान्त यह सन्देश देता है कि एक परमसत् निर्गुण ब्रह्म को ही कोई राम, कोई कृष्ण, कोई अल्लाह, कोई खुदा, कोई ईशु और वाहेगुरू कोई शिव कहकर अपनी–अपनी श्रद्धानुसार सगुण बना देते है परन्तु वस्तुतः तो एक ही ब्रह्म सभी जगह अलग – अलग रूप धारण कर लेता है। इसी भावना को राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक यदि अपने मन में रखे तो प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय दूसरे धर्म व सम्प्रदाय का सदैव सम्मान करेगा, क्योंकि उन्हे सदैव ये संज्ञान रहेगा कि किसी भी धर्म व सम्प्रदाय के ईश्वर एक ही परमसत्ता के विभिन्न रूप है। किसी भी ईश्वर की उपासना परमसत्ता की उपासना ही है।

अद्वैत वेदान्त का एक और सम्प्रत्यय है जो राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाये रखने में अपना योगदान देता है वह है यहाँ के समष्टि व्यष्टि का भाव। वेदान्तसार में कहा गया है – "इदमज्ञान समष्टि व्यष्ट्यभिप्रायेणैकमनेकमिति च व्यवह्रियते। एतदुपहितयोरीश्वरप्राज्ञयोरपि जलाशयजलगतप्रतिबिम्बाकशयोरिव वाऽभेदः।" अर्थात् यह अज्ञान एक ही है, लेकिन समष्टि और व्यष्टि के अभिप्राय से क्रमशः एक और अनेक कहा गया है। उसी तरह अज्ञानसमष्टि और अज्ञानव्यष्टि से उपहित ईश्वर और प्राज्ञ में भी वैसी ही एकता है, जैसी जलाशय में प्रतिबिम्बित आकाश और नदी, वापी आदी में प्रतिबिम्बित आकाश में होती है। समष्टि व्यष्टि के एकत्व का निर्धारण कर यहाँ यह भाव रखा गया है कि जब किसी समष्टिगत भूखण्ड की संचेतना का विराट व्योम वैशिष्ट्य के वितान से सम्पूर्णतः अच्छादित हो जाता है तब ऐसे राष्ट्र में रंग, जाति, धर्म और संप्रदाय के भेद की कलुषता नही होती वरन् सर्वत्र "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्" का परिदृश्य परिलक्षित होता है। व्यष्टि चेतना की संकीर्ण सरणी को छोड़कर समष्टि चेतना के जनपथ पर चलने की प्रबुद्ध प्रचेष्टा की जाती है। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की परिकल्पना की जाती है, उसे कार्यान्वित करने की सतत चेष्टा की जाती है।

शोध छात्रा,
संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय